आख़िर कब तक भारी बस्ता ढोते रहेंगे बच्चे



सुधीर पटवर्धन, बस अड्डा, 2024

स्कूल यूनिफॉर्म पहने भारी-भरकम बस्ते उठाकर पैदल, दोपहिया, तिपहिया वाहनों से स्कूल जाते, स्कूली वाहनों का इंतज़ार करते बच्चे भारत की सुबह की तस्वीर का अभिन्न हिस्सा हैं। ये उगते सूरज की मानिंद, नियम की तरह तय समय पर रोज़ दिखाई देते हैं। कंधों से लटकते इनकी पीठ से भी बड़े बस्ते बेढब तो लगते ही हैं, ये उनके शरीर और मन पर गहरा असर डालते हैं। लेकिन हम शायद ही इसके दुष्प्रभाव पर सोचते हैं।

स्कूल जाने वाले बच्चों में स्कूल बैग के वज़न के कारण होने वाले मांसपेशियों और हड्डियों के दर्द को समझने वाला एक **अध्ययन** 2022 में प्रकाशित हुआ था। इसमें 8–15 साल के बच्चे शामिल किए गए। यह अध्ययन भोपाल शहर के निजी स्कूलों में जाने वाले बच्चों पर किया गया। इसने पाया कि 56 प्रतिशत बच्चों ने पिछले एक महीने में मांसपेशियों और हड्डियों का दर्द महसूस किया। सोलह-अठ्ठारह की उम्र तक बच्चों का शरीर तीव्र विकास की अवस्था में होता है। हड्डियाँ और मांसपेशियाँ विकसित हो रही होती हैं। भारी बस्ते की वजह से उनके खड़े होने और चलने का ढंग प्रभावित होता है, उनकी चाल विकृत होती है। इस पर हुए मेडिकल साइंस के **रिसर्चों** ने यह स्थापित किया है कि इससे हड्डियों, ऊतकों तथा मांसपेशियों पर दीर्घकालिक दुष्प्रभाव पड़ते हैं।

इस मुद्दे पर सरकारी दिशानिर्देश तो हैं, लेकिन उनका अनुपालन शून्य है। लोकसभा को दिए गए एक **जवाब** में भारत के शिक्षा राज्य मंत्री ने बताया कि स्कूली बस्तों के भार पर बनी एक विशेषज्ञ कमेटी ने इस बाबत निर्देश दिए हुए हैं। कमेटी

ने निर्धारित किया है कि स्कूली बस्ते का वज़न बच्चों के शरीर के वज़न से 10 प्रतिशत ज़्यादा नहीं होना चाहिए। इस कमेटी के निर्देशों के तुरंत बाद हुए एक **अध्ययन** ने पता करने की कोशिश की कि कितने बच्चे मानक से भारी बस्ता उठा रहे हैं। पुणे और हैदराबाद के स्कूली बच्चों पर हुए इस अध्ययन ने पाया कि करीब 77 प्रतिशत बच्चे मानक से भारी बस्ता ढो रहे हैं।

अपने देश में निजी स्कूलों की बढ़ती संख्या और उनमें बढ़ते दाख़िले का स्तर भी काफी हद तक इस समस्या का एक कारण है। 2021-22 और 2025-26 के बीच **निजी स्कूलों में दाख़िला** 31 से बढ़कर 38 प्रतिशत हो गया है। इस दौरान सरकारी स्कूलों में दाख़िला सात प्रतिशत गिरा है। छोटी उम्र के बच्चे अधिकाधिक संख्या में निजी स्कूलों में जा रहे हैं। प्री-प्राइमरी/किंडरगार्टेन के दो-तिहाई से ज़्यादा बच्चे निजी स्कूलों में तथा प्राइमरी के 40 प्रतिशत बच्चे। सरकारी स्कूलों की तुलना में निजी स्कूल जाने वाले एक बच्चे पर साल में औसतन दस गुना ज़्यादा **खर्च** आता है। ख़र्च सिर्फ़ स्कूल की मासिक फ़ीस और एडमिशन फ़ीस तक सीमित नहीं रहता। बस्ते, यूनिफॉर्म, और कॉपी-किताबें मनमाने दामों पर बेचकर निजी स्कूल बेलगाम मुनाफ़ा कमाते हैं। चूँकि एनसीईआरटी तथा राजकीय बोर्डों द्वारा प्रकाशित किताबों की क़ीमत तय होती है, इसलिए निजी स्कूल निजी प्रकाशकों की किताबें बेचते हैं। क़ीमत ऊँची रखने के लिए ये किताबें अक्सर अनावश्यक रूप से भारी-भरकम बनाई जाती हैं। उदाहरण के लिए एनसीईआरटी की किसी भी कक्षा की गणित की किताब ले लें। एनसीईआरटी ख़ुद यह किताब छापती है और इसकी अधिकतम खुदरा क़ीमत निर्धारित होती है। इसी तरह राजकीय बोर्ड की किताबें भी बोर्ड ख़ुद छापता है और उसकी अधिकतम क़ीमत तय करता है।

सरकारी स्कूल एनसीईआरटी या राजकीय बोर्ड की किताबें ही इस्तेमाल करते हैं। लेकिन निजी सीबीएसई स्कूल विरले ही एनसीईआरटी की किताबें लगवाते और इस्तेमाल करते मिलेंगे। ये आमतौर पर इससे दसियों गुना महँगी, और बेहद भारी किताब को अपने सिलेबस में लगाते हैं और सीधा बच्चों को महँगे दाम पर बेचते हैं। इसके अलावा, हर विषय के लिए साइड बुक्स भी ख़रीदनी होती हैं। ऐसा ही बैग और यूनिफॉर्म के साथ भी होता है। इन माध्यमों से हर बच्चे से ये मोटा मुनाफ़ा ऐंठते हैं। बेतहाशा मुनाफ़ा कमाने के इन हथकंडों का खामियाज़ा बच्चे और उनके अभिभावक भुगतते हैं। आए दिन निजी स्कूलों के मनमानी की ख़बरें आती रहती हैं। कुछ महीने पहले एक अभिवावक की **वीडियो वायरल** हुई जिसमें वो बताते हैं कि दूसरी कक्षा में पढ़ने वाले उनके बच्चे को निजी स्कूल से 30 किलो का बस्ता और कॉपी-किताबें ख़रीदनी पड़ीं जिसके लिए उन्हें नौ हज़ार रुपए देने पड़े।

शिक्षा का अधिकार सरकार को बाध्य करता है कि वो पैदल पहुँचने के दायरे में बच्चों को स्कूल मुहैया कराए। जबकि निजी स्कूलों पर ऐसा कोई बंधन नहीं है। उनके फ़ैसलों को उँची माँग और अधिकतम मुनाफ़ा निर्धारित करते हैं। इस वजह से, ख़ासकर गाँवों में, निजी स्कूल अक्सर काफ़ी दूर स्थित होते हैं और इनकी संख्या भी सरकारी स्कूलों की तुलना में कम होती है। बेहतर शिक्षा की चाह में अभिभावक बच्चों को दूर के निजी स्कूलों में दाख़िला दिलाते हैं। इससे बच्चों को स्कूल आने-जाने के दौरान ज़्यादा लंबे समय तक भारी बस्तों को ढोना पढ़ता है। रही-सही कसर कोचिंग के ट्रेंड ने पूरी कर दी है। भारी बस्ते उठाने का क्रम स्कूल से घर वापस आने पर ख़त्म नहीं होता। घर से बस्ता टाँगकर अधिकांश: बच्चे कोचिंग करने जाते हैं।

प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को याद करते हुए हर वर्ष उनका जन्मदिन (14 नवंबर) बाल दिवस के रूप में मनाया जाता है। नेहरू को बच्चे बहुत प्रिय थे। बच्चे सबको ही प्रिय होते हैं। बच्चों से जुड़े हुए मुद्दे बड़े गंभीरता से लिए जाने चाहिए। ख़ासकर वो चीज़ें जो उनकी ज़िंदगी की गुणवत्ता और भविष्य को प्रभावित करती हैं। भारी बस्ता ऐसा ही एक मसला है। बड़े आश्चर्य की बात है कि रोज़ इस अत्याचार को देखते रहने के बाद भी यह अब तक एक गंभीर मुद्दा बनने में असफल रहा है। स्कूलों की मनमानी और ऊँची फ़ीस, किताबें और वर्दी वगैरह के माध्यम से धन उगाही जैसे मुद्दे कभी-कभार समाचार पत्रों में जगह पा जाते हैं। इनसे जुड़े वीडियो और रीलें वायरल हो जाती हैं। यह एक सामाजिक मुद्दा नहीं बन पाता जिसपर त्वरित कारवाई की ज़रूरत समझी जाए।

उमेश यादव